त्रिधारा



सम्पादक

कैलाशपति मिश्र, बन्धु

त्रिधारा के कवि

- श्री पंडित कैलाशपति मिश्र "बन्धु"
- श्री जगदीश नारायण सिंह
- श्री जयशंकर वाजपेयी

प्रकाशकः—

साहित्यकार सहयोगी प्रकाशन

भदैनी—वाराणसी

एक हजार प्रतियाँ प्रथम संस्करण

मूल्य— एक रुपया पचास पैसा

मुद्रक—

रामायण प्रेस, अस्सी, वाराणसी

"श्री वाग्देवी विजयतेतराम्"

भूमिका 'त्रिधारा' की

बाबा विश्वनाथ की "तीन लोक से न्यारी नगरी वाराणसी" की उसी गौरवमयी परम्परा में .... जिसमें साहित्य संस्कृति, कला, दर्शन तथा आध्यात्म की अनेक अनेक धारायें भिन्न-भिन्न युगों में विभिन्न मतवादों का प्रतिनिधित्व करती हुई सहस्त्राब्दियों से निरन्तर प्रवहमान हैं—'त्रिधारा' भी उन्हीं धाराओं की त्रिगुणात्मक त्रिवेणी है काशी में प्रयाग की पुनरावृत्ति है। त्रिधारा के स्नेही सम्पादक बन्धुवर 'बन्धु' जी मेरे बालसखा ही नहीं आज भी अभिन्न सहचर हैं उनके सत्प्रयासों ने अबतक कितनों को प्रकाशित किया है। अपने भी कुछ कम प्रकाशित नहीं। 'त्रिधारा' की अन्य दो धारायें भी सहज गतिशील— —...कल-कलवती कालिन्दी तथा अन्तः सलिला सरस्वती के साथ संगम नी जाह्नवी की उपमा को भी सहज ही स्वीकार लेती है।

दूर दूर से आकर क्षण भर के लिये मिलकर उसी में घुल मिल जाना ही संगम की सार्थकथा है.............और इस माने में 'त्रिधारा' एक सफल 'संगम' की भूमिका अदा करती है।

'त्रिधारा' के इन तीन कवियों में प्रथम श्री जयशंकर वाजपेयी जी इस अर्थ में सच्चे कवि हैं कि स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद की तरह इनकी कविताओं में भी विरह की वेदना है...........आँसुओं की छटपटाहट है—...— भावों की सुघर अभिव्यक्ति है। प्रकृति की परम रमणीय गोद में जन–मानस को कराहते हुए देखकर किसी भी कवि के लिये मुस्कुराहटों में भी आह की आहट पाना अस्वाभाविक नहीं।

व्यथा की ऊमस एवं उसासों की आँधी में मोम की तरह सिमटकर-सिकुड़ जाना जीवन की इतिकर्त्तव्यता नही बल्कि दूसरों की वेदना में संवेदना प्रकट कर आँसुओं को पोछ देना ही उसकी सफलता

है। कहना असंगत न होगा कि श्री वाजपेयी जी में इन भावों की मधुर, मार्मिक तथा मौलिक अभिव्यक्ति है।

श्रीजगदीश नारायण सिंह जी अपनी नन्हीं-नन्हीं उक्तियों में भावों की गूढ़ व्यञ्जना करते हुए गीतों में 'गागर में सागर' भरने का प्रयास करते दीख रहे हैं। "उर्दू" की सहज गतिशीलता लिये इनकी भाषा चपल खंजन सी फुदकती हुई……… थिरकती हुई लोक-लोचनों को तो सहज ही खींच लेती ही है,सुनने वालों को भी सहसा स्तब्ध बना देती है।

"छोटे-छोटे शेरों में 'गालिब' की सी भाव-व्यञ्जना कवि की चिरन्तन-चिन्तन शीलता का परिणाम है" इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। मैं इनके भावों के साथ-साथ भाषा के सौष्ठव पर मुग्ध होकर इनके उत्तरोत्तर सफल अभियानों की कामना करता हूँ।

'त्रिधारा' के तीसरे और अन्तिम कवि श्री पण्डित कैलाशपति मिश्र 'वन्धु' जी जो इस पूस्तक के सम्पादक भी हैं। अपने छात्र-जीवन से ही भारतेन्दु जी के समान साहित्य सृजन में लीन हैं तथा हिन्दी और भोजपुरी में गीत और कहानियाँ लिखते रहे हैं। इनकी कहानियों का एक संकलन 'पंच-प्रसून' तथा गीतों का एक संग्रह 'समर्पण गीत' वर्षों पूर्व प्रकाशित होकर आपकी सेवा में आ चुका है। अनुभव के आधार पर लिखी गई इनकी "प्रूफ-संशोधन-प्रणाली" भी प्रकाशित होकर अव तक न जाने कितने नये नये लेखकों और कवियों को……… वेरोजगार अल्पशिक्षितों को तथा प्रेस के शताधिक कर्मचारियों को एक ही साथ लाभान्वित कर सकी है। मेरे 'नवरत्न' 'उर्वशी' तथा 'संस्कृत व्याकरण-सुधा' आदि के प्रकाशन में इस पुस्तक के साथ-साथ लेखक का सहयोग भी सर्वथा सराहानीय रहा है।

आपकी अनेक रचनायें यद्यपि अभी अप्रकाशित हैं तथापि आपके भोजपुरी गीत अनेकानेक कण्ठों से गाये जा कर आज भी आसमान में गूंज रहे हैं… …कहानियों का दूसरा संग्रह छपने को प्रस्तुत है…… कवितायें प्रेस में प्रेषित हैं। मैं विश्वस्त हूँ कि आपकी अनछपी रचनायें

भी शीघ्र ही छपकर सामने आयेंगी और मनोरञ्जन के साथ-साथ स्थान-स्थान पर अपने 'कान्ता सम्मित उपदेश' के द्वारा लाभान्वित भी कर पायेंगी। इसी विश्वास के साथ।

—अम्बिका दत्त त्रिपाठी 'व्यास'

वसन्त पंचमी

२०२९ विक्रमाब्द

सुदामा-सदन तिवारी टोला,
डुमराँव, भोजपुर



इस लघु प्रकाशन में कतिपय कठिनाइयों का सामना अवश्य करना पड़ा फिर भी प्रसन्नता इस बात की रही कि मेरे मित्र व वि श्री जयशंकर वाजपेयी तथा श्री जगदीश नारायण सिंह जी ने अपने अनवरत एवं अथक परिश्रम से इस कार्य को सम्पन्न कराया।

इस संकलन के प्रकाशन के लिये श्री भूपेन्द्र नाथ सिंह तथा प्रेमशंकर तिवारी जी ने विशेष प्रोत्साहित किया अतः हम उनकी इस प्रेरणा के कृतज्ञ हैं। साथ ही 'नया संसार प्रेस' के संचालक श्री शिवनारायण उपाध्याय जी को इस प्रकाशन में कुछ कष्ट अवश्य दिया गया किन्तु उनकी सौहार्दता से ही इस पुस्तक के प्रारम्भिक दो फर्मों की छपाई हो सकी है, हम उनके ऋणी हैं।

छायाचित्रों के लिए हम 'सुचित्रा स्टूडियो मानस मन्दिर वाराणसी' के आभारी हैं। उन्होंने अपनी अमूल्य कला से हमारा सहयोग किया है।

अपने मित्र श्री अम्बिकादत्त त्रिपाठी व्यास का मैं आभारी हूँ जिन्होंने मेरे आग्रह से अविलम्ब ही इस पुस्तक की भूमिका तैयार कर दी।

अन्त में त्रिधारा की दृष्टि उत्सुक है अपने सहृदय पाठक बन्धुओं के मुखमण्डल पर तिरती भाव-भंगिमाओं को देखने और समझने को।

—सम्पादक



श्री जयशंकर बाजपेयी

कानपुर जिलान्तर्गत ग्राम रायपुर निवासी पण्डित श्री बनवारी लाल जी वाजपेयी जिस समय अमेठी राज्य में कोषाध्यक्ष पद पर कार्यरत थे वहीं के ग्राम रामनगर में कवि श्री जयशंकर वाजपेयी का जन्म भाद्रपद की कृष्णपक्षीया षष्टी को गोधूलिवेला के आस-पास सन् १९४६ ई० में हुआ । माता श्रीमती लक्ष्मी देवी वाजपेयी ने बालक को बचपन से ही रामायण, महाभारत आदि की कथाएँ सुना-सुनाकर नैतिक संस्कारों से समलंकृत किया ।

प्रारम्भिक शिक्षा अपने ग्राम रायपुर के ही स्थानीय पाठशालाओं में हुई। हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त कर सन् १९६३ ई० में श्री वाजपेयी ने वाराणसी आगमन किया और अब सपरिवार यहीं रह रहे हैं।

प्रारम्भ से ही अध्ययन की बलवती अभिलाषा थी यही कारण है कि बिना प्रोत्साहन तथा विभिन्न प्रकार के सामाजिक एवं आर्थिक अवरोधों पर विजय पाते हुए अपने अध्ययन की टूटती कड़ियों को पुनः जोड़ने का सफल प्रयास किया।

संगीत एवं साहित्य के प्रति अटूट लगन बचपन से ही है किन्तु काशी आने पर श्रद्धेय श्री रमाकान्त जी मिश्र ने संगीत तथा पूज्यपाद श्री भगवतीप्रसाद जी मालवीय (प्रवक्ता का० हि० वि० वि०) एवं श्री शिवदत्त शर्मा जी चतुर्वेदी (प्रवक्ता का० हि० वि० वि०) ने साहित्य की धूमिल प्रेरणा को बड़े ही स्नेह से धवलिमा प्रदान की।

भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ; कहानियाँ और लेख समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। कवि की बाल साहित्य सम्बन्धी कविताओं का संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। कवि श्री वाजपेयी जी का विशेष परिचय उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित मिलेगा। मुझे इनसे हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि की पूर्ण आशा है।

—सम्पादक

नूतन वसन्त

सरस–रसाल--लसित—
सौरभ--मय नव मंजरियोंसे।
कायाकल्पित विटप संकुल,
भ्रमर-वृन्दका मनहर गुंजन,
विहगोंका कल गीत,
नये धान्यसे शोभित वसुधा,
मलयानिलका मन्द परिवहन,
नवप्रभासे आलोकित नीलाम्बर
परिव्याप्त सर्वत्र मदिर लालिमा,
नभकी नीलिमासे मिश्रित,
नूतन वसन्त आगत।
भर ले नव उमङ्ग—
मानव निज मानसमें।
पलायित हों—
कुविचार, प्रमाद, पाखण्ड, निराशा।
आलस्य भरा जीवन
पुनः स्पन्दित हो।
नवचेतनासे—
शुभागमन हो,
नव्य भावनाओंका।



गीत

वासना के स्वर बिखर माटी मिले
अब प्रणय की बीन में अनुराग कैसा ?
नर्म धुँधली चाँदनी में
घोल दी मुस्कान तुमने
इन्द्रधनुषी स्नेह–छलकन
तोल दी अनजान तुमने
पावसी रिमझिम थिरक पग थम गये
कल्पना के दृग सरस ऋतु–बाग कैसा ?
जल रही वह उधर देखो
चीखती हर चेतना
चंदनी विश्वास तेरा
आज व्याकुल वेदना
मौन हर अहसास जब मुखरित हुए
सूझ के माथे लगे फिर दाग कैसा ?
संक्रमित पहिचान के
भूले हुए क्षण
तुम बटोरो कांच के
बिखरे हुए कण
लौटता सूरज हमेशा अनकहे
फिर व्यथा के दीप विरह-विहाग कैसा ?



आँसू बन गीत बरसते हैं

पलकों में जो सपने सोये
थपकी देकर उन्हें सुला दो
भींग चुका है आँचल तेरा
मेरे अब बादल लौटा दो
बदली बन जो छायी अलकें
उभरे इन्द्रधनुष सुधियों के
टीसों का उपहार न लो तुम
घुंघरु मत बाँधो बूंदों के
मुझसे तुमने खुशियां चाहीं
लेकिन मैं लाचार सदा से
भूल बड़ी कर पछताया मैं
कर बैठा जो प्यार अदा से
पावस के मौसम में अम्बर
कितने चित्र खींचता है
हाय ! मेरा जीवन यह अनगढ़
प्रतिमा देख रीझता है
वैसे तो हर मौसम में ही काजल नैन परसते हैं
किन्तु पावसी मौसम में आँसू बन गीत बरसते हैं



परदेशी घर लौटा

सूख गये आँखों के आँसू तरस गयी सावन की प्यास
छितराये अलकों में सोया बदली का चन्द्रमा उदास
कुछ काले कुछ भूरे पीले कुछ लाल
जंगल में खेल रहे हिरनों के बाल
कुचल गये भावों के द्वन्द्व हार वन जीत मुस्कुरा गयी
पुरवा के हल्के स्पर्श जीवन की आस थरथरा गयी
टकराकर सूनेपन से लौट आयी थकी-थकी चीख
बेवश हो फिर आती-जाती रुकी-रुकी सांसे बिकी भीख
बिखरा कर अनजाने मोती परदेशी अपने घर लौटा
कैसे इनको मैं भरलूं कितना मेरा आँचल छोटा



गीत

गगन की पावस छटा,
हृदय से उमड़ी घटा
कुछ कहो, कुछ तो कहो
काँपते पग थम गये
दृष्टि भी पथरा गयी
क्यों अकेले मौन धीरे
शून्य में लहरा गयी
वेदना की आग में ही मत दहो
कुछ कहो, कुछ तो कहो !



बादली बहारों का गाँव

छूती हैं लपटें आकाश
उड़े उम्र-उमस वन गुबार।
सूनापन हांफता हुआ,
पहुँच गया मौत के कगार॥

दूर बहुत दूर का सफर,
दुपहर का तीखा उपहास
पांवों में चुभते कंकड़,
घावों में पुरता अहसास॥

गांछों की भागती कतार,
पहुँची है मंजिल के पार।
साहस का फैलता तनाव,
कुचल रहा पाकर पथराव॥

सिमट गये सम्भव प्रयास,
उलझनने तोड़ दिया कांच॥
बादली बहारों का गांव,
क्षण भर को, तरस गयी आंच।

भावों के शंकित संदर्भ,
आंखों में भर देते धूल।
पोर-पोर डसती हुई,
स्मृति ने छोड़ दिया कूल॥



दो पाँखें

मन ऊबा
सूरज डूब गया
अस्ताचल की घाटी में
देकर, यह विश्वास
कि—
कल फिर
उग आयेंगे
नये-नये अंकुर
तेरी
इस
गीली-गीली माटी में।

× × ×

कार्टूनो जिन्दगी की रफ्तार
धीमी न पड़े
कि—
तुम,
लौट आओ!
चूम सको
जिससे—
आखिरी
छोर तो
रागवती सन्ध्या का।
तितलियों के, भौंरों के
पंख
पराग़ सने
अहसास देंगे तुम्हें
कुछ
और ही…!



क्या करूँगा ?

मैं समझ लूँगा—
यह स्वप्न था,
और समूची जिन्दगी भी
एक स्वप्न है!
किन्तु—
सुनसान घाटी का फूल
खिलेगा ही कभी
हवा ले आयेगी मुझ तक
गन्ध उसकी…।
कड़वी नीम भी गदरायेगी
धरती महक उठेगी
झरेंगे फूल
मरमर कुछ कह देगा।
सोचो तो भला—
तब मैं,
क्या करूँगा ?

वाह

स्थिर गहरी झील में
सहसा चुभती एक किरन
भोर की वेला
निकलता सूरज
हलचल—सी
स्मृति तरंगें
वासीपन धोने तक
पुनः तप्त हो जातीं
शीत स्पर्श अभिलषित
नर्म उंगलियां
सितार के परदों पर
थिरकने से
मुँह मोड़ती, हारती हिम्मत
अलसायी आँखों से निहारती
चमकते विस्तृत नभ को
कमल पंखुड़ी
वाह—……—।



भौचक्का

वासी जिन्दगी
जो गुजर चुकी है
कुछ ब्लाक्स हैं
हमारे पास
उसके
बार-बार उन्हें ही
अदल-बदल क्रम में
रख,
मौलिक कृति कर्ता के रूप में
फुलाते हैं हम
छाती को अपनी
और बेताब होते हैं
जोड़ने को अपना
शाश्वत् यशःपूत अस्तित्व
उससे ।
तब तक
नटखट गौरैया
दबाकर चोंच में
उड़ चुकी होती है
एक दाना और—
मैं तब भी
दार्शनिक कवि मुद्रा में
ताकता हूँ आसमान की ओर
भौचक्का…!

अमृत या विष

स्वप्निल सुमनों की पंखुड़ियाँ
झुलसीं सूखीं गिरकर बिखरी
कदमों तले धूल मिली ।
उभरती विगत स्मृतियाँ,
डसती, कचोटती, तोड़ती नस-नस
आक्रान्त हृदय ।
घुटन कराहट चीख · ?
पुकार—
क्यों न मिली…?
वेवस वेचारे छटपटाते
सिल दिये गये होठ ।
पथराये दृग
निर्झर बन वहा दें—
अमृत या विष ?



बदनाम चाँदनी

जी चाहता है—
जिन्दगी के दो क्षण
तुम्हारी छाँव तले
गुजार लूँ… ।
आरती उतारूँ
फिर,प्यार से
पुकारूँ तुम्हें ।
धड़कन थम जाये
दुलार लूँ ।
आवारा दिन बीता
सोयी-सी शाम है—
शरद की चाँदनी
आखिर बदनाम है :

चाहे........!

जीवन !
उफ...!!
फटे–चीथड़े
मैले–कुचैले
तर–वतर
पसीने से
वदवू आती है,
दो क्षण
पास किसी भले के
वैठूं—
हिम्मत नहीं होती।
जिन्दगी !
उफ... !!
दाब कर पेट
मन मसोस कर
पत्नी
सो गयी है,
छोटा वच्चा भी
रोटी...रोटी...रोटी
चीख चिल्लाहट के बीच
निद्रा की गोद
सोया है।
मैं हूँ और है
टूटी झंगली खाट
लानत
छोटे से परिवार तक को
भर पेट सूखी रोटी
एक वक्त भी
दे सकने में—
असमर्थ जो।
जिन्दगी !
उफ... !!
भीख
हाँ भीख
नहीं भीख तो
नहीं मांगूगा
चाहे...!

मौन-कथन

गहराते कुहरे की
कंपसीली सांझ
लौट आया था—
निराश—उदास…?
वेशर्म आंसू टपके
तुम्हारी गली की
सिमटी अचेत ईंटों पर,
और फिर—
न जाने क्यों ?
पास के मकान से उठता धुआं,
आकाश की ओर बढ़ता हुआ,
सामने मेरी आंखों के—
कुछ देर ठहरा था बनकर
प्रश्न-चिन्ह ?
तब से कितने वर्ष
आकुलता गले लगाये
निर्णय की आस में
बीत रहे।
विक्षिप्त हो भटकता
मेरा यह विश्वास
पा लेता समाधान ?
काश—
तुम्हारे मौन कथन का।



ऊंह…!

चिलचिलाती धूप
चीखती दोपहरी।
अधमरी चेतना
अवशेष
मात्र अस्थि पंजर
पराभूत—
प्रखर ग्रीष्म ज्वाल
क्षुधा-ज्वाल से !
खिड़की से
एयरकूल्ड कमरे से झांकते
एक खूबसूरत कंजूस चेहरे तक को
दया आ गयी दया……!
पर, मुश्किल हैं
फेंकने दो पैसे
बाहर, दरवाजे तक
जाये तो कौन ?
लू लग गयी तो ?
चला ही जायगा
रिरिया कर, घिघिया कर
खिड़की बन्द एक गूंज
ऊँह …

शीतलहरी

धरती से अम्बर तक
पूरगया खालीपन
कुहरे से'''पाले से''''!
सहमे दुबके सिमटे बैठे
ठिठुर गये पक्षी कुछ
कैद घोसलों में,
नीचे गिरकर कुछ
जो अकड़ गये
अब, न चहकेंगे
किसी भोर''''किसी शाम।

बेघर भिखमंगों से
महलों के बासिन्दे
न मिला पाते हाथ
सामना होते ही
करते प्रस्थान सदा को
शून्य में।
तन चीरती चौतरफा
तेज रफ्तार से छहरी-छहरी
भीषण, भयंकर, बर्फीले झकोरोंवाली
प्राण चाटती, हहराती शीतलहरी



तो, कैसे

कुछ अजीबोगरीब चेहरों बीच
गुजरता मैं
उभरी-उभरी
काली भूरी रेखाओं से
बनते-मिटते अक्षरों का
आशय-समन्वय बैठाती
मेरी
उठतीं-झिपतीं पलकें समेट
कड़वे तीखे स्वाद
अधरों तक अभिव्यक्तिको

आकुल भाव
रह जाते हैं तरसकर
क्योंकि—
बहुरंगी तितलियाँ
पंखविहीन हो
सम्पुटों के चुम्बन को
समर्पित कर चुकी होती हैं
अपने क्षणभंगुर प्राण
बात आगे बढ़े भी—
तो, कैसे ?

किसकी ?

फोटू है
हाँ ! फोटू
इसकी या उसकी
क्या जानूँ—
किसकी ?

था.... ?

उसने कहा था
मैंने सुना था
पता नहीं क्या ?
कहा था
सुना था
था.......?



दीवाली !

दीवाली !
..... दीवाली !!
चौतरफा दीवाली !!
खुश तो हूं—
जेब रहे
भरी-भरी
या खाली
दीवाली ।
........दीवाली ।।
चौतरफा दीवाली !"

किससे कहूँ ?

वासन्ती मलयानिल
बात कहे बार बार
धीरे जो कान में
सुनूँ
और चुप रहूँ
छलकन जलभरी
सूनी आँखों की
देख-देख
मन ही मन
मैं—
——नित दहूँ
किससे कहूँ ?

अंकुर

सिन्दूरी साँझ
निर्णय की साँझ
जीवन या मरण की !
जीवन ने—
ओढ़ ली है
धुँधली चादर
असमंजस की
और मरण—
जिसके अंतराल में
उग आये हैं
अंकुर
अधमरी आशा के ।



वही सूरज

निर्जीव-सी
सुनसान अँधेरी घाटी के कोने में
गहरी निद्रा में
सो गई जिन्दगी
खो गई जिन्दगी
पता नहीं कब
दबे-पाँव अहसास
सुनहरी भोर का
खुट्'''खुट्-खुट्'''खुट्'''!
सिरहाने मेरे
पास कानों के ।।
ठण्डी पलकें पाकर ऊष्मा कुछ
कुनकुनी और मुलायम
होती हैं
देखता हूँ
काफी ऊपर
आसमान के
वही सूरज
चढ़ आया है
और रोजमर्रे में
चल पड़े हैं चराने भेंड़बकरियाँ
लाठी लिये गड़ेरिये ।

समझलूँ

व्यथित हूँ
बोझ ढोते-ढोते
दरमेच गयी गरदन
आखिर तो बैठ गयी।
पग भर भी
चला नहीं जाता
उतारूँ भी तो—
कहाँ······ !
घर से बाहर !
पेट साथ है
आत्महत्या करूँ ?
कायर कहलाऊँगा
तोड़ दूँ मान्यतायें ?
आत्मा धिक्कारेगी
त्राण कैसे ? फिर ?
समझ लूँ !
जिन्दगी बोझ
पर खुशनुमा
सफलता वही, और
सच्ची सुखानुभूति भी।



उकताव

बरसने वाले बादल
हवा नहीं लाती
सूखते पेड़ों ने
हड़ताल बोल दी
हिलते-डुलते तक नहीं
पत्ते·········।
ठप है
व्यापार उसका।
थरमस में बन्द
चाय की तरह
बेचैन उबलते
ढक्कन में सुराख करने
छलांगें भरते लोग
वातानुकूलित कमरों,
रेफरीजरेटरों को कोसते हैं।
उमस के थमे-थमे धुएँ में
घुटने-घुटते उकता गये।
बेचारे······!

वे : ये

क्या वे हैं ?
और ये क्या हैं ।
परिधि के एक ही विन्दु से
चले हैं दोनों ही ।
देखो न ?
केन्द्र से दौड़ती ......
परिधि को छूती त्रिज्यायें,
विछाती फूल कदमों तले
उनके–
और चुभती शूल वन तलवो में,
इनके–
क्या वे हैं ।
और क्या ये हैं ?
वे तो मीठे अन्दाज में
मुस्कुराते हर कोण से;
इनका प्रत्येक रुख
सिसकियां भरता है, रोता है ।
उन्हें लोग 'बाबू'
'अबे' इन्हें कहते हैं ।



क्या देंगे ?

जुलाई आ गयी,
स्कूल-कालेज खुले,
नव सत्रारम्भ !
कीचड़ से लतपथ,
बच्चों को लिए-दिये,
भागते-गिरते पड़ते,
प्रवेशार्थ परेशान अभिभावक ।
प्राचार्यों की गोड़धरी में व्यस्त !
विना सोर्स सीट खाली नहीं
टेस्ट के माध्यम से वर्धित पक्षपात
निराशा की रेखायें...
सुकुमार नवनिहालों के मुख पर
खिंचती, सीखते वे प्रथम पाठ
सोर्सबाजी और वटरिंग की ।
प्रक्रिया में मला ये बच्चे
कल्पना करें
क्या देंगे ?

मुक्ति: मुस्कराहट

टूटी कुर्सी…
खुरदरी मेज
डुप्लीकेट रजिस्टर
भीतर से फ्रेम लगा
पुरानी फाइलें
तलाशता
क्लर्क…पाबन्द
पीठ पर हल्की
क्षण भर के लिये
उढ़कान मार
चुर्की टटोलने को
बेताबी से
अपनी गंजी चाँद तक
ले जाता हुआ
हाथ ।
बनाने के संदर्भ में
धूल धूसरित शीशे से
झाँकता मुस्कुराता
चेहरा तुम्हारा
काश !
दिला पाता
मुक्ति
एक भी दिन की
उसे ।



प्रेमिका

बेताब
हल्के-चटख चुम्बन को
हर छलकती प्याली
प्रेमिका है !
किसी न किसी की !!
मेरी न सही
इससे क्या ?



हो नहीं सकता...!

राड्स पर राड्स
मरकरी लैम्प्स
लतर दर लतर विद्युत्-मालायें
सजाओ न।
कैसे भी—
जलाओ न!
कितना ही—
फिर भी, धुँधलका है,
धुँधला चारो ओर—
नकाबपोश आदर्शों की
धुली-पुँछी इमारत पर
दिखती नहीं
हल्की-सी रेख तक
उजाले की,
सच, यह सच है।
अंधी आँखों में—
प्रकाश किरणें भरने की
हो सकती है साजिस, बस
मात्र साजिस
मानता हूँ—
कुकृत्यों से छलनी
कराहते अन्तस की
'समझते हो वेदना भी'
मित्र! बुरा न मानो!!
हो नहीं सकता।

हम पक्षी

बीहड़ जंगल के
सघन अँधेरे में
नीड़ों में सोने आये
दानों की तलाश में
दौड़-धूप चकनाचूर तन
थकी-मादी चिड़ियों से
कहो तो,
उठें और जलायें दिये
मनायें जगमग-जगमग
दीवाली आलोकमयी
वे कहेंगे—
चुप रहो, सोने दो
'जब न होगा दाना
बन्दा फिरेगा उताना'
रही बात रश्म-अदायगी की
उससे तो हमेशा
रहते हैं दूर ही
हम पक्षी,
न नर,
न नरभक्षी!

तुम न रुठो !!

मैं—
मलय से
माँग लाता हूँ
सुबह की
गन्ध भींनी।
चूमकर
उसको पुनः
तुम झूम लेना
पाँखुरी के
एक कम्पन पर
व्यथित हो
रीझने वाली
नरम दिल
ओ ! धरा की
दूब सूखी !
तुम न रूठो !!

चलना है....!

प्रखर किरणों के
बरसते नभ से—
दहकते अंगारे !
तपती तवे-सी धरती
लिपटती तन से
लू लपट-सी
उठतीं चिनगारियाँ
मौसमी जलन से ?
जलना है, तुम्हें
चलना ...!

नाकाम हरकतें

चौराहे की छँट चुकी भीड़ में
गुम पहिचानें
अपने-पराये चेहरों की
नीरवता में डूब चुके हैं
रिश्ते—
गलियों, कमरों, बरामदों के
गहराती रात
उनींदी पलकें—
बेताब कैद करने को
नीले-पीले चटख स्वप्न ?
बदलती उम्मीदें
बावजूद भी
नाकाम हरकतों के
कोशिस में है—
हथेली पर पुते अँधेरे पर
सफेद चमकदार
पालिश लगाने की।

है न....?

रक्ताभचञ्चु-पुटों में
अधपकी सुआपंखी
लटकाये बालियाँ धान की।
नीले आकाश तले-
आम्र-निकुञ्जों की ओर
अग्रसर
लहराता शुक-संकुल।
छीलना बन्द कर
घास हरी-हरी
निहारा था एक टक
क्षण दो ..चार !
भैंस चरा रहे मुझसे
वादा किया था
कुछ...
याद है न !
वर्षों बाद—
खेत वही—
वही शुक...
तुम बदली इतना कि—
आम बात हो गयी
'न पहिचानना
तुम्हारा,'
नहीं सालता अन्तस्
है न...!

आ देखो !

मैं अँधेरे में
लग जाता हूँ
टटोलने कुछ
और तन जाती हैं
भौंहे तुम्हारी।
आखिर, क्यों ?
सर खपाने से पूर्व
सोचो तो —
तुम्हारी वह
वक्र-भंगिमा
दिखती भी है
मुझे क्या ?
मैं तो कहूँगा—
प्रकाश में नहाना छोड़
अंधेरी बस्तियों, गलियों,
बखारों में,
कैसा अमन्द उजाला
मुस्कुराता हुआ
होता है—
आ देखो ?

उपलेवाली

बरसकर निकल गये,
रस-भरे बादल—
धुला-धुला स्वच्छ
खुला आसमान ?
मधुर-मधुर यह वेला
पावस के सांझ की।
सजे-धजे रंगे-पुते
नये किस्म के
मकान खिलौनों से
मदहोश महकती हैं
रजनी-गन्धायें !

छमकती हैं कितनी ही
देखो न ! परियाँ।
नीलाभा अम्बर की
पाण्डुप्रभा चन्दा की
तारों की शुभ्रा से
लगता है चूम रही
रंगीनी कण-कण की।
भींगे उपले कल
बिकेंगे कैसे ?
चिन्तित है, सिर्फ—
आँसू पीती वह लड़की
उपलेवाली ?

लफंगे—

छितराये टुकड़े
टूटी स्मृतियों के
बिखरे-से क्वाँर के
बादल बदरंग।
सन्ध्या किरणों की
फीकी चमक लिये
वेदना मिश्रित मुस्कान पर
करते-से पालिश !

दिन भर की थकान की
आँच पी गये हैं
निःश्वासों में इनकी
निशामुखी की
गरम-गरम भीनी
समायी है मादकता।
कल की बात—
सोचते ही नहीं
लफंगे...?

बिखराव

[गीत रचने का प्रयास नहीं किया, सहज अभिव्यक्तियों को रोका भी नहीं। परिणाम-स्वरूप अभी गीत नहीं उनका 'बिखराव' ही प्रस्तुत कर पा रहा हूँ। प्रतीक्षा में हूँ सौंदर्य-संचयन की।—कवि]

गीत जगे आहों की आस में।
घिरे-घिरे बादल आकाश में॥

मत सींचो दर्द भरे अंकुर जल जाने दो,
मेरी आशाओं के फूल खिल न पाने दो।

आज मेरी जिन्दगी ने प्यार की सौगात पा ली,
भर गया है दर्द से दिल और तो हर बात खाली।

गीत ने है प्रीति की सौगन्ध खाली—
और अब अनुराग बरसे तो यहाँ क्या!

सुन चुका हूँ उलझनों की आपबीती
आज तेरी सुलझनों का गीत सुन लूँ।

आँखों में तरुणाई झाँक रही।
सूरज की अरुणाई आँक रही॥

उजड़ गयी बसती बंजारों की
ये खूबी महलों मीनारों की
हरे-भरे खेत और सँवरे बगीचे
दूर-दूर बिछे-बिछे दूब के गलीचे
उघड़ गयी बाहें बहारों की—
ये खूबी महलों मीनारों की।

मेरी वीणा ! क्यों सोई हो ?
देखो तो ! उठो !! बहार नयी ।

कल्पना सोई अभी है
मुस्कुराकर मत जगाओ !
भावना तुम लौट जाओ !!
तुम छलक न पाओ बहको
संजो-संजो पलकों में थिरकन
मैं चूमूँ उमस-भरे क्षण-कन
आँचल की गन्ध लिए शिशुमन !
कभी-कभी सपनों में अनजाने
कुहराये चित्र उभर आते हैं ।
झुलस गये अन्तस् के छालों को
बे-मौसम हरा बना जाते हैं ।।
चेहरे पर स्मित की
शर्माई-सी फिसलन
चुभनों का मीठापन
निर्णय जैसी उलझन ।

तुम मुझे दो वेदना मैं गीत दूँ !
हार सारी जिन्दगी लूँ, जीत दूं !!

तुम किसी की जिन्दगी की हार हो ।
और मृग-तृष्णा सदृश बेकार हो ।।
सोचता हूँ कुछ हमारा खो गया है ।
भाग्य का जगता सितारा सो गया है ।।

भावनाओं की गली कुहराम कैसा,
चल पड़े जब पांव तो आराम कैसा ?



श्री जगदीश नारायण सिंह

श्री जगदीश नारायण सिंह भावुक कवि होने के साथ-साथ कुशल व्यावहारिक भी हैं। आप के पिता श्री भगवती प्रसाद सिंह जी बड़े सहृदय हैं। आपका जन्म सत्रह जुलाई सन् उन्नीस सौ इक्यावन में वाराणसी जिले के उत्तरी छोर पर स्थित कैथी ग्राम में हुआ और वहीं आपकी प्रारम्भिक शिक्षा भी सम्पन्न हुई। प्रातः स्मरणीया माँ शारदा देवी की पीयूष वाणी, मिलन सौहार्दता, निश्छलता तथा सौम्यता की देन है कि आप हर किसी से दिल खोलकर सहज रूप से

मिलते हैं। कविताओं की रचनाका शौक आपको बचपन से ही था। अपनी रचना को प्रस्तुत करने पर आपको जायसवाल इन्टर कालेज चेतगंज वाराणसी से पुरस्कृत भी किया गया था। समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। आपके चित्रण की कला 'प्रतिशोध' उपन्यास से स्पष्ट झलकती है जो शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है। 'बिखरे फूल–निखरे धूल' कहानी संग्रह तथा 'सफर' और 'अमर प्रेम' दो काव्य जल्द ही प्रकाश में आ रहे हैं। आपने उर्दू में भी रचनायें की हैं। अंग्रेजी के गीतों में भी आपकी रूचि कम नहीं है। आप अंग्रेजी के भावात्मक गीतों के सर्जक हैं। कवि को अपनी अंग्रेजी की क्रान्तिकारी तथा प्रभाव-शाली रचनाओं को त्रिधारा में देने की बड़ी उत्कण्ठा थी किन्तु हिन्दी में अंग्रेजी की रचनाओं का समावेश कुछ खटकता है अतः दूसरे माध्यम से समाज में प्रस्तुत करने की मेरी योजना कवि ने सहर्ष स्वीकार किया। विज्ञान के छात्र होते हुए भी कवि का हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू के प्रति अनुराग सराहनीय है। आपके दृढ़ संकल्प से त्रिधारा का यह रूप प्रकाश में आ सका है। आप हिन्दी साहित्य की सेवा में निरन्तर लगे रहें यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है—

सम्पादक

हरित राह

इस पार तड़पता कवि एक धड़कन की श्रमित पुकार देख
एक दिल के शत हत टुकड़े की भावना व्यथित उपहार देख।

कल-कल निनाद संगीत प्रेम
हर विन्दु ऐक्यता का प्रमान
कुछ विन्दु भँवर थे चाह रहे
वन जाना चिंगारी महान
ठोकरें गिरातीं कभी उठातीं
मिटा न पर उनका अज्ञान
ऐ क्रन्दन वेवसी तिहारे
पास श्रमित संसार देख

इस पार तड़पता··· ··· ··· ··· ··· ··· ···

वक्षस्थल तेरा विधा हुआ
युग-युग के महाकरालों से
उसपर मन्थन अविरल गति से
आदर्श महारखवालों से
प्रेमाञ्चल जरा उग्र होता
कट जाता महानिरालों से
जव प्रकृति प्रकोप मिटा देती
कारुणिक रुदन हर बार देख

इस पार तड़पता ··· ··· ··· ··· ··· ···· ···

गमे तम

क्या अज़ीब है मस्ती में खुदी भूल जाऊँ
अफसोस घने मेघ पीछा कर रहे हैं
काश ! उनकी हस्ती को भी मिटा पाऊँ।

हरीतिमा

विश्व सौंदर्य
प्रांगण से
जहाँ
हरीतिमा
हिलोरें लेती है....?
ऐक्य प्रवलता की
पंक्ति बद्धता
कैसी मनोहर है
तपन आभा के
प्राथमिकता का केलि
बाहुपाश में
मोती सा
जगमगाता है उसे।
काश !
स्थैर्य होता
वक्त पलटा
रश्मि ने बदल दिया
पावन चोला
शैशव मुस्कराता गया
यौवन ने तड़पा दिया
विश्वविमोहिनी हरीतिमा
झुलस गयी
तभी वह
चीख उठी
जरा ने ठुकरा दिया
रौद्रता
पट खुला
शीतलता का,
निर्दयता छुप गई
अवशेष अरुणिमा ने
झुककर
चूम लिया उसे
और वह
पुनः हँस पड़ी।

एक दृष्टिकोण

प्रकाश पुंज
मयंक का
बढ़ रहा है
तीन तरफ
प्यास
नौकरी
और समाज
उसका बिम्ब
कहता है
झुककर
हर तरफ...!

साधना

एकाएक भावना लो चल पड़ी
कामना वन उमड़ रहे सागर को
स्वप्न डावांडोल हो घायल हुआ
बेखबर सा देखकर प्रभाकर को।

चुभ गई अतीत की कोई झलक
उमड़ रहे कशक समा जाने को
वेदना चोला बदल कर आ गई
आज लेकिन मात खा जाने को।

चाहता ही रह गया व्यथित पथिक
छाँव पलकों की सदा मिलती रहे
समय गति भी रुक सके तो क्या कहें
प्यास आंखों की अगर खिलती रहे।

हाय ! -दुर्दिन का भयानक प्रलय यह
चल दिया सारे जहाँ को ही रुलाकर
हम किसी बेजान बन्जर में गिरे
साधने ! लेकिन तुम्हें कैसे भुलाकर ?

कुछ भी नहीं...!

कुछ दूर से
बेबस सा
नज़रें मिलाना
ज़ाम छलकते देख
हाथ हिलाना
कब तक चलेगा...?
दो कदम

लौकिकता के लिए
प्यार चीखता है
और मैं
भुना जा रहा हूं
उसका
कुछ नहीं
कुछ भी नहीं...

प्यास

तड़पता एक दिल
मचलती एक महफिल
शुक्र था खुदा का
दोनों गये मिल
छलकता देख यौवन
दिले क़रार खो गया
करीब थोड़ा ही गया
कि बेताब हो गया
मदिर पिपासा
कैसे पहुँची होठ तक
समझ भी न पाया
वो था अभी तक

महफिल की रौशनी
वन गई कातिल।
चोटों पर चोटें आईं
घायल हुआ दिल
जज़्बात रोते देखता
वासना का साहिल
दाँतों तले अँगुली
दवा के कामना
मृतक तुल्य भावना
के साथ गई खिल
तड़पता रहा दिल
वन के आज काहिल।

एक भूल

कुछ ऐसे भी दिल हैं इस जमाने में
खोजते ग़म हैं हर फसाने में
दहलीज़ इश्के तूफाँ की
आई जो छलक पैमाने में
कहीं पर देख लिया
फड़फड़ाता दामन
और घायल भी जो हुआ तो
अपने ही शफाखाने में
जल रहा है परवाना इधर
शमा को गन्ध भी नहीं मिली

वह तो मस्त है
किसी वहाने में
दिले दर्द को दवा दिया
तो देखता ज़ख्मी जिगर
गिरा है वह
किसी मैखाने में
पाँव लड़खड़ाता देख
किसी शायर ने कह दिया
भूल तुमसे हो गई
कहीं पर अन्जाने में !

मैंने देखा......?

अल्हड़ मासूम जवानी में
मैंने जीवन पलते देखा
जो यौवन की ही तूली से
बन गई एक चित्र-लेखा।

श्वासों का सुखद समर्पण था
चख-मधुमय अभी छलकता था
पर हाय! दिवा स्वप्न ये था
अभिशाप अराजकता का था

शोलों की दीन परिधि में भी
अरमानों के मज़ार पर ही
चुपचाप अकेले दम साधे
उस शव को भी जलते देखा
मैंने जीवन पलते देखा

हँस रहे कुसुम के अन्तर में
सुषमा की ललित कलाओं में
ताज़गी सरस से व्यंजन में
स्वच्छन्द विचरते हर रँग में

अरमान भ्रमर आ जाते हैं
फिर स्वप्न हँसी बन जाते हैं
मिटते हैं कहीं लुप्त होकर
निस्सार त्रसित यह जग खोकर

ऐसी गर्वित सुन्दरता को
बेरुखी हँसी हँसते देखा
अल्हड़ मासूम जवानी में
मैंने जीवन पलते देखा।

दीन…, दीन

प्रेम के
कितने ही दरवाजे
हर से तेरे
अन्दाज़
—विराजे
टूटी दीवारें
फर्श पर बिखरे कण
हर प्राचीन के दिल में
यौवन के गीत
—जगे ताजे
उनका एहसास करा
आखिर
तू चली गई
वृद्ध हरीतिमा
छली गई
रखवाले को
वीभत्स रूप पर
तरस आ गया
उसने उसकी
सर्जरी करा
उसे नवीन कहा
फिर भी
अन्तस तो
—दीन रहा।

एकान्त

सुदूर….
काल की घड़घड़ाहट
सुना था
देखता हूँ गुज़रते
वह मैं ही था
सिर्फ जिससे
आँखें चार हुईं
भीड़ में भी जो
एकान्त
पा लेता हूँ।

एक चाह

रात ढलने को है, चाँद छिपने को है
प्यार की दास्ताँ अब सिमटने को है
मेघ आता है घिर-घिर चमन में ये क्यूँ
क्या दुआओं का मौसम निखरने को है ?

सहमा नयन

एक किरण सँकुची यौवन की
चितवत चपला डरी नयन की
देख दशा अन्तस धड़कन की
बन्द लाज पट दीन्ह मनन की।

म्लान चाल की छिपी लाल सी
आस मधुर संगीत ताल सी
नाशक आतम काल-काल सी
नयन बिछाये प्रेम-जाल सी।

आवत भ्रमर उपेक्षा कैसी
जागृति में बेहोशी जैसी
नयन भावना दया कली की
कूद पड़ा ऐसी क्या वैसी।

निद्रा

सुधा सलिल ने व्याधि चुराई
अम्बर ने भी नीरवता
धिक् दिक् से गरिमा को है
सौरभ च्युत सी मानवता
कर्तव्य शयन निश्चेष्ट रहा
बच गई महालौकिकता
आघात अट्टहास करले
चैतन्य नहीं है टिकता।

आह !

रात साहिल आज की है
प्यार अब जगने को है
कल्पना क्यूँ हस रही है
आज कुछ मदहोश हो
श्वास कैसी गीत गाती
आज कुछ खामोश हो
क्या निगाहों की कहानी
आज सच होने को है।
चाँद भी हँसता हुआ है
चांदनी की ओट ले
दर्द से घायल जिगर है
दामिनी की चोट से
मेघ के उखड़े कदम पर
वो तरस खाने को है।

× × ×

विन्दु चली हर्षित मिलने को,
अनन्तता धारा प्रवाह से।
सन्ध्या भींग चली है आँचल,
रिमझिम बरस रहे आह से ॥

क्यों, शर्मे !

उपेक्षा कहूँ··· संवेदना थी
अल्हड़ता होगी पास में—
राह में— तड़पन है
आशा थी — बस में
आह में— क्यों, शर्मे...?

लुका छिपी

छुप-छुप कर
कहीं खोती
चली जा रही हो
सोती
मचली जा रही हो
पास में अन्यमनस्कता
याद है,
यह जानने को
मुझे भी तो
छुपना पड़ा था।

जरा सोचो ?

जरा… !
प्यास नहीं बुझी
क्यों…?
कई बार तो
सिन्दूर भरा
माँग फिर भी नही भरी
कामिनी तरस खाती है
बार-बार…
झुर्रीदार चेहरा देख
आदमकद आइने के सामने
क्या करे लेकिन ?
कैसे सुला दे ??
कैसे भुला दे ???
सर्वस्व…
पितृभाव से सने
कह दे भावने !
एक को ले
शून्य !
दस न बनो
युग को सोचो
उस यौवन को मोचो
ताजी हवा में जो
जा रहा है अभी
साँस लेने
तुम तो ले चुके न…
जरा सोचो…, जरा सोचो…

विखरे कण

(१)

सामने से चली गई यौवन की सीढ़ी,
गुज़र गई जैसे पीढ़ी-दर पीढ़ी।

(२)

समा जाऊं तेरे इश्कये जहान में मैं इतना,
तू तू न रहे मैं मैं न रहूँ एहसास हो न अपना।

(३)

वचना ऐ दिल जरा जुल्फे घटा घनघोर से,
कहीं 'घायल' जिगर होगा एक ही झकझोर से।

(४)

खैरमग्दम को तेरे लालाइत हो अवाम इतना,
कि शुमार हो न लोगों की उजलत हो इक झलक को भी।

(५)

थिरक रही स्वर्णिम वन में ये कौन आज मतवाली ?
सुन्दर सुगठित यौवन की लिए छलकती प्याली।
आते देखा जब सुमनों ने मादकता एक निराली।
विछ गये देख कोमलता कदमों में छोड़ प्रणाली।

(६)

चलो कुछ दूर लौटो फिर ये कैसी रे खुदाई है,
डुबा डाला जो दरिया में तो कहती ये जुदाई है।

(७)

ज़ख़्म न गहरा जाने लगता कभी कहीं परवाने
'घायल' भूल न करना फिर से होगा यह अन्जाने।

(८)

ऐ हुस्ने कदरदाँ, इतना है क्यूँ गुरूर
गँवारा नहीं नज़र है जो इतना सुरूर
राहे वफा में तेरे ये अर्ज़ है ज़ुरूर
ठुकरा न दे अरे ये दिले मर्ज़ है हुज़ूर

(९)

तमन्ना हो न क्यूँ ऐ दिल तुम्हें शोलों पे चलने की
नज़र ने बात की होगी जो पैमाँ के छलकने की
हुई साजिश नहीं होगी कहीं से तुझको छलने की
नहीं जल-जल के मरने की भले मर-मरके जलने की

(१०)

न देता छोड़ क्यूँ दस्तूर
फिसली है जो दुनियाँ का
जवानी पर तरस खा लो
जो गुज़री ये तो सुधियाँ क्या ?

(११)

कौन समझ पाया है जीवन !
तेरी गूढ़ कहानी।
भरी हुई रग-रग में जिसके
एक चाह अन्जानी॥

(१२)

रुख इधर करले जरा जानिब मेरी अन्जान
नज़रों से आज नज़रों का पैगाम तो देने दे
वीरान दिल में आये फिर नया इक तूफान
नज़रों से मुहब्बत का अरे सलाम तो लेने दे ।

(१३)

राह में रहा राह रात—रात देखता
रहम रोते—रोते रसिया से चाहता
रुक—रुक के रह—रह के फरियाद माँगता
रात रहने न पाये प्रभात चाहता ।

(१४)

निर्निमेषता समा गई है
नयनाम्बर के नीचे ।
व्यग्र लालसा संजो रही है
आलिंगन में भींचे ॥

(१५)

चक्षु ने जब चख ली आँसू को
देखा जग का एक नया रूप
झिलमिल-झिलमिल सी बूँदों में
था इन्द्रधनुष मचला अनूप ।

झुलस-झुलस कर रह जाते हैं
अन्तस के जो बिखरे कण
शोला झाँक लिया करता है
उनमें कभी किसी भी क्षण ।

आह:चाह

तरस रहे युग-युग से प्यासे
वरस रहे ना नयन विचारे
लगी हुई दावाग्नि प्रवल है
धुआँ अस्त तो कहीं सितारे

मिट न सकेगी आह तुम्हारी
ऐ दिल ऐसी प्रवंचना में
कहीं और अब चाह ले चलो
वन्द प्यार जब विडम्वना में

जब तारों का झुण्ड न था
सारंग मन्द गति बढ़ता था
कदमों को मेरे देख देख
वह कदम बढ़ाता चलता था

जब तेज चला वह दौड़ पड़ा
रुक गया जहाँ वह ठिठक गया
आँसू वरसाये जब मैंने
देखा नभ में वह सिसक पड़ा

आज अहा ! यह आज, आज
तड़पाता मचलाता बस है
मीठी झनकार विगत धुन पर
गाता इठलाता वरवस है

ध्यान भ्रमित हो विखर गया
सत्यता तथ्य से लिपट गई
आहत की तीखी दवी चीख
जब छलक—छलक कर सिमट गई ।

राकेश सजा दरबार खिला
तब गिरा फिसल कानून बनी
पगतले पड़ी है भाग मेरी
वह सूर प्रभा से सूर बनी

अब चाह आह से विजित हुई
दिन तो पर निशा कहाँ जाये
इस नीलाम्बर के परे जाय
या मैं जाऊँ या वह जाये ।

एक कुत्ता

रात का सन्नाटा ......!
अमा की कालिमा......!!
किसी भूत सा मैं
चला जा रहा था
तभी मेरी दृष्टि उससे टकराई
हँस पड़ा मैं
सामन्जस्य था उसका
हाँ... वह कोई कुत्ता था।

यकायक मेरी हँसी
मुरझा गई
उसकी आवाज़ से
स्वागत गान न हुआ
ध्यान खिंच जाना स्वाभाविक था
देखा—
उसका मुँह कसकर बँधा था
मुझसे न रहा गया

मैंने बन्धन तोड़ दिया
मुक्त होकर वह
कमदों में लोटने लगा
मैंने पूछा—
तेरा स्वर किसने छीनना चाहा
उसने कहा—
वह देखो साम्यवादी नकाब पोशों
वे ही हैं

शीशे से झलकता है
विलास उनका
और सुनो—
मैं कुत्ता नहीं
यह कह उसने
एक खोल हटा दिया
विस्मित हो गया मैं
वह, सहृदयता थी !

कैद

तड़पन की चार दीवारी में
पागल पन की काल कोठरी में
वक्त की जंजीर से लिपटे
स्वार्थ की वेड़ियों से कसकर बधे
दिल में एक शमा जलाये

क्या देखते हो ?
हाँ तुम कैद हो
डर है
कहीं तुम पर
पुराना दौर न चल जाय !

मधुर संगीत

अरमाँ मूक हैं
एक हलचल पाये
असीम प्यास छिपाये
फिर भी खामोश
कैसी है ये ?

कलकल की आवाज भी
आज जाने
शान्त क्यूं है
शायद खो गई
कहीं मधुर संगीत में

फिर भी

रोते हुये तपते हो
या तपते हुए रोते हो
क्या है राज ?
धन्य है तू
रश्मि प्रेम में
भूल गया खुदी
क्या दिया उसने
जलन !

फिर भी
प्यार-तार
वे करार किया
पर तार–तार नहीं किया
रजनी ने भी चाहा
आगोश में फँसाना
पर आँसुओं के सिवा
भला तुमने क्या दिया ?

नारी : एक रुख

नारी
बाजार में
चल रही है
अवैधानिक
दो मुस्टँड उस पर
अट्टहास करते हैं
और वह

दुबकी सी
छल रही है
अपने को,
सपने को
जो था पहले
आगोश से
लगने को।

प्रेमान्चल

सितारे दर झुलस जायें
वहारें गर गुजर जाये
किनारे भी बहक जायें
नज़ारे भी मुकर जायें
हमेशा तुम जवाँ रहना
खबर तक भी न आ पाये
ऐ शवनम की हसीं किस्मत
बुलन्दी मुस्करा आये ।

नया इतिहास

रेडियो चीख रहा है
घमासान वारिश ने
युद्ध छेड़ दिया
या कोई नेता
युद्धकाल का
इतिहास सुना रहा है ।

तुम क्या जानो.......

तुम क्या जानो साकी
गर कोई तुम्हें रुलाया होता
कभी जाम को ही
पैंमाँ ने जो भुलाया हो
भ्रम ने जीवन देकर
इतना गर तड़पाया होता
डूब चले होते तुम अब तक
आँसू निधि वहाया होता
तुम क्या जानो साकी
गर कोई तुम्हें रुलाया होता

क्या है ?

—:o:—

गज़ल

बता साकी अदाओं का तुम्हारे माजरा क्या है
जवानी की रवानी में बनी है जो जरा क्या है
लगा दे आग पानी में दिखा दे तो खरा क्या है
तुम्हारे पायनाज़ों पर अरे देखो मरा क्या है
निगाहें कैद में कहतीं बता मेरी सज़ा क्या है
हुईं आज़ाद ग़र ये तो कहेंगे सब कज़ा क्या है
फरक जो है ज़रा सा भी नज़र के बस अदा क्या है
न पूछो अब तो अच्छा है बताने को रज़ा क्या है
इन्हीं का सब करिश्मा है बग़ैर इनके जहाँ क्या है
यहाँ क्या है वहाँ क्या है कहीं पर भी कहाँ क्या है
चलूँगा पर बता तो दे मुहब्बत का समाँ क्या है
है काफी इतना आशिक को कि कदमों का निशाँ क्या है
हुआ मरहूम दिल तो फिर ज़रा क्या है ज़बाँ क्या है
बहारों के ही गफलत में जो भूले कि फिज़ाँ क्या है
मरा हूँ मौत से पहले तुम्हारा भी बज़ाँ क्या है
जो आती है कज़ा फिर तो यही कहते यहाँ क्या है ?



श्री पण्डित कैलाशपति मिश्र "बन्धु"



जन्म—जुलाई सन् १९३२ ई०

निवास – बिगहीं–बलिया–उत्तर–प्रदेश

सम्पादक

आदमी रोता है
अपनी असफलता पर
अपनी परवशता पर
अपनी अभाव की सीमा से
कहते जिसको निर्धनता से
पद दलित किया जाता मानव जब कष्टों से
नरक तुल्य यातना मनुज जब पाता है
तब अन्तर के कोलाहल को
अपनी वाणी तक लाता है
हम कहते हैं वह कवि है
नित नवल राग गाता है

गीत

युग का नव निर्माण करो कवि

काल चक्र की जीर्ण भीत्ति पर
अन्तर वाहर की अतृप्ति पर

आज स्नेह अवलेह लगाकर

जन मानस में प्राण भरो कवि
युग का नव निर्माण करो कवि

धूल–धूसरित समय-शिला पर
वक्र किया रे हिला-हिला कर

भेद-भाव का गंध फूँक मत

पुनः न तुम मृयमाण करो कवि
युग का नव निर्माण करो कवि

कितने नवीन प्राचीन बने
कितने नव अर्वाचीन बने

किन्तु आज नव हो नव ऊपर

विगत–विगत परित्राण करो कवि
युग का नव निर्माण करो कवि

गीत

वरसो रे वरसो रे बादल

अन्धकार घन-घोर घटा हो
रवि की धूमिल आज छटा हो
धरती पर पानी बन उतरे
नभकामिनि के दृग के काजल
वरसो रे वरसो रे बादल

युग-युग से यह वसुधा प्यासी
ओस चाटती बन उपवासी
भरजाये उर भरे उदर भी
डूबे आज रसा का आंचल
वरसो रे वरसो रे बादल

केवल जल हो केवल जल हो
कहीं न चेतन जड़ हो थल हो
युग-युगान्त हो तब होवें मनु
तब थल हो या होवे दलदल
वरसो रे वरसो रे बादल

गीत

साधना के दीप मेरे तुम जलो ! जलते रहो तुम

मुक्त है तेरी पिपासा
आ रहा वह कौन प्यासा
वेदना उनकी मगर अनुभूति तेरी
प्राण की सम्वर्तिका सी
तुम गलो ! गलते रहो तुम !

× × ×

ज्योति के भी विम्ब होंगे
विम्ब के अगणित जहाँ प्रतिविम्ब होंगे
लुप्त हो उनकी छटा में तुम अहर्निश
शान्त प्रज्ञा चक्षु को भी
तुम छलो ! छलते रहो तुम !

+ × ×

नित पुरातन ध्वस्त होगा
ज्ञान नव निर्माण में ही व्यस्त होगा
ठोस कोई वस्तु कन्चन सी निखर कर
पुनः पथ पर
तुम चलो ! चलते रहो तुम !

× × ×

बनो प्रह्लाद होली में

किसी का दिल दुखावो मत
बनो प्रह्लाद होली में
विश्व में क्यों आज कटुता बढ़ रही है
स्वार्थपरता की लता जो चढ़ रही है
कौन कहता है तुम्हें तुम आदमी
अरे रे हिरण्यकश्यप हो
कहाँ है बहन तेरी होलिके
उसको जलाओ मत
करो आजाद होली में

× × ×

ये होली है भरो सद्भावना का रंग झोली में
भगा कर दुर्गुणों को तुम करो सतसंग होली में
तुम्हारे साथ में किसने, कहाँ,
कितनी भलाई की
अरे उसकी अभी कीमत चुकानी है
उसे साथी भुलाओ मत
करो तुम याद होली में

× × ×

जो आये हों तू उनमें प्रेम का बन्धन लगा दो
न आये हों जो सोये हों उन्हें जाकर जगा दो
संगठन से जाति का उत्थान होगा
द्वेष का उत्थान होगा
विश्व का उत्थान होगा
कि तुम सुस्ती दिखाओ मत
करो पक्का अभी बुनियाद होली में

× × ×

विधारा : ४५

गीत

एक पैसे से न कुछ आलोक का आभास होगा।

आज निर्धनता खड़ी मुख खोल कर
दे सका इतना भी कितना तोल कर
ग्रहण कर अपहार मेरा एक पैसा
कौन जाने कल न यह भी पास होगा

× × ×

एक बीड़ी को विकल थे तीन घंटे
और भी होंगे न कितने तीन घंटे
अर्थ से हूँ हीन जितना भाव का उतना धनी हूँ
पर तुम्हें मुझ पर कहाँ विश्वास होगा

× × ×

छाप सकते गीत मेरा मानता हूं
दे न सकते एक कौड़ी जानता हूँ
और अब कितना लिखूं तुम छाप पावोगे बताओ
इस लोक क्या उस लोक में अवकाश होगा

× × ×

गीत

कौन सा विश्वास मन का
ढो रहा है भार तन का
कौन अन्तर में बसा है
कौन बाहर से कसा है

नित्यप्रति जो तोड़ता
है जोड़ता सम्बन्ध जन का
× × ×

कौन सा यह अगम जल है
कौन सा यह आज कल है

कौन जो तुमको डुबोता
है बचाता कौन तिनका
× × ×

गीत

मौन तेरी साधना है

बोलना है पाप जग में

बोलना अभिशाप जग में

खोल अन्तर नयन मानव

तब सही आराधना है

मौन तेरी साधना है

कौन विजयी बोलकर है

बोलता जो तोलकर है

कटु सत्य है लेकिन तुम्हें तो

बोलना वह भी मना है

मौन तेरीसाधना है

एक शीर्षक दो गीत

एकसरिता है
जो दो ऊंचे कछारों के बीच
निर्भीक अदम्भ साहस ले
सतत् अनवरत वारवार
टकराती किनारों से
तोड़ती है
फोड़ती है
जोड़तो है धारा से धारा को
मार्ग प्रसस्त करती है
एक नहीं
आने वाली अगणित लहरों की
और स्वयं मस्ती में गाती है
आज नहीं कल-कल का
उद्घोषन दे जाती है।

और एक तुम हो
जो मानव महामानव कहलाने के चक्कर में
ईंटे के टुकड़े विखेर रहे
साम्प्रदायिकत्ता के
पत्थर के टुकड़े लुढ़काते हो
जाति वाद के वर्ग वाद के
और दलबन्दी के दल-दल में
सब को फंसाते हो
शब्दों का गलत शब्दकोश भी बनाते हो
जिससे आने वाली पीढ़ी दरपीढ़ी
फ़ंसे धंसे लुढ़के या गिरे
और तुम हंसो मस्ती लो
किन्तु भूलो मत
पीछे से जितनी जमात आती है
तुम्हें उल्लू बनाती है
गाली दे जाती है
और तेरे काले कारनामोंपर
थूकती ही जाती है।

गीत

गजब की उमस है बरसने से पहले
हवा मौन है
पात हिलता नहीं
धीरता दूर भागी
गगन में कहीं
वेदना से विकल घुट रहा सांस है
टूटता आज नभ है तड़पने से पहले
× × ×
कौन सी साधना
आज साधा नहीं
कृष्ण है व्योम में
किन्तु राधा नहीं
दामिनी कामिनी सी दमकती रही
जिन्दगी यह निरस है धड़कने से पहले
× × ×
चेतना शून्य अटकी
रही तार पर
रागिनी कौन मुखरित
करे हार पर
मन चला किन्तु फिर भी ठिठकता रहा
जब विवश है जकड़ने से पहले
गजब की उमस है बरसने से पहले

तुमआयी हो

चाँदनी तो बाहर थी
मैं था बन्द कमरे में
× × ×
अरे तुम आयी हो
यहाँ तो दिन का प्रकाश
बाहर का बाहर रह जाता है
डर से ही भीतर नहीं आता है
और जेल की कोठरी का छत जरजर
तभी गिरा धरती पर एक पत्थर
× × ×
मैं कहाँ सोया था
मैं तो अपनी गम में ही खोया था।
तभी तो कानों में
जूँ तक नहीं रेंगी
आँख भर खुली है
इस लिए की तुम आयी हो।

नारी

प्रश्न यह प्राचीन
जिसका हल न अब तक हो सका है
बन रहा है और बनता है
न जाने और कितने दिन बनेगा
प्रश्न यह दुस्तर निरन्तर बन रहा है
घूंट पर प्रति घूंट जैसे ढ़ल रहा है
भस्म शंकर ने किया
पर काम का अभिशाप तुमको
हो गया है आज नारी रूप पर विश्वास कैसा
न श्रद्धा आज नारी में
न है विश्वास नारी में
शक्ति नारी में कहाँ जो जन्म देगी राम का
कृष्ण का बलराम का
शक्ति नारी में कहाँ है
भक्ति नारी में कहाँ है
जन्म फिर भी दे सकेगी
किन्तु कामी श्वान का
आज नारी के पतन का मूल क्या है ?
पुरुष कुत्सित वासना ही
प्रश्न टेढ़ा है
निरन्तर वक्र होता जा रहा है
सही जो अर्थ दम्पति का
उसी को खा रहा है
एक नारी से न नारी जगत का निर्माण होगा
दस पाँच से भी तो नहीं इस विश्व का कल्याण होगा
यह समस्या आज नारी मात्र की है
और नारी को सही नारी बना दे
खोज ऐसे पात्र की है
किन्तु जग में आज नारी रुप की प्रतियोगिता है
वासना की तृप्ति नारी की नहीं उपयोगिता है ।

मट्टी का भगवान

धनिकों का भगवान बना सोने चान्दी का
तभी पिघल जाता है
उनकी स्वल्प साधना की गर्मी से
और बना भगवान हमारा पत्थर का
तभी हमारी कठिन तपस्या से भी साथी
दूर बहुत ही दूर पिघलना
उलटे वह गरमा जाता है
किन्तु जरा सोचो तो साथी
मट्टी के इस मनुए का भगवान कहाँ पत्थर का होगा
हम मट्टी के मट्टी का भगवान हमारा
मट्टी से निर्मित काया को
मट्टी से जीवन मिलता है
मट्टी से दर्शन मिलता है
मट्टी का भगवान बोल सकता मेरे किन्चित दुलार से
मट्टी का भगवान पिघल सकता है मेरे अश्रुधार से
देगा यदि वरदान तुम्हें
यह मट्टी का भगवान अरे
तो पत्थर की प्रतिभा में बैठा
हँस देगा भगवान कभी।

अल्थीमेत्तम

आत्मा से आज के विज्ञान का
विश्वास उठता जा रहा है
शोध नित विज्ञान का
वैज्ञानिकों को खा रहा है
विज्ञान के नव साधनों से
हो रहीं किलकारियाँ
पुरुष भोगी बन रहा है
गिर रही हैं नारियाँ
आत्मा अब लोटती है
बुद्धि ऊपर बढ़ रही है
जीव की सत् साधनायें
चन्द्रमा तक चढ़ रही हैं
उड़ रहा मन आज नभ में
जा रहा छिति-छोर पर
सड़ गयी है विश्व-मानव
झूलता जिस डोर पर
आज मन को बाँध मानव
तभी आत्मज्ञान होगा
तब कहीं विज्ञान से
इस विश्व का कल्याण होगा
और यदि ऐसा नहीं तो
समझ ले विस्फोट होगा
विश्व का इतिहास
सागर लहर पर ही नोट होगा

गीत

मानव प्यार करो रे
छोड़ आज दानवी वृत्ति तू
छोड़ आज कलुषित प्रवृत्ति तू
अन्तर के छल—दम्भ—झूठ का
तुम संहार करो रे
मानव प्यार करो रे

हिंसा प्रति-हिंसा छोड़ो
स्नेह भाव मानव से जोड़ो
आज सत्य का इस धरती पर
तुम व्यापार करो रे
मानव प्यार करो रे

भेद—भाव का गंध नाश हो
कटुता—शत्रुता का विनाश हो
जन-जन में बन्धुत्व भाव का
तुम संचार करो रे
मानव प्यार करो रे

गीत

लिखो ! लिखो ! कवि तुम अतीत के गान
नन्हें-नन्हें शिशुओं को
कब किसने कहाँ गढ़ा था
रे संसृति के नग्न रुप पर
कब आवरण चढ़ा था
कला हीन प्राचीन वसन में
थी कितनी मुसकान

× × ×

बुद्धि और चातुरी अधिक कम
क्यों मानव में दी थी
वर्ण-भिन्नता उसी नियन्ता ने
क्या जग में की थी
किसमें अधिक तपश्चर्या थी
किसमें कितना ज्ञान

× × ×

कौन विश्व में बना अग्रणी
किसका शुद्ध विचार था
कब-कब इस धरती को सींचा
किसका पावन प्यार था
किसमें कितना बल पौरुष था
किसकी किर्त्ति महान
लिखो ! लिखो ! कवि तुम अतीत के गान

श्री कैलाशपति मिश्र, बन्धु की अन्य प्रकाशित कृतियाँ—

पंच प्रसून

(पाँच कहानियों का संग्रह) मूल्य—एक रुपया

समर्पण गीत

(अड़तीस गीतों का संग्रह) मूल्य — एक रुपया

प्रूफ संशोधन प्रणाली

(एक फर्मे की लघु पुस्तिका) मूल्य — एक रुपया

प्राप्ति स्थान— १. मिश्र-बन्धु-विद्या-सदन, बिगहीं-बलिया

२. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस, वाराणसी